COMPILED

South Africa Prachar Series No. 3

सनातन धर्म
और
आर्य्य समाज

गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०

SOUTH AFRICA PRACHAR SERIES

५.२
२०

.२
२०

मूल्य [illegible] आना या [illegible] पेंस

ओ३म्

सनातन धर्म और आर्य्य समाज

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

दिल्ली

मुद्रक—

विश्वप्रकाश

कला प्रेस, प्रयाग।

सभा की रजत-जयन्ती के अवसर पर डर्बन में लिया गया चित्र

॥ ओ३म् ॥

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०
मंत्री

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
बलिदान भवन,
दिल्ली

[illegible]

[illegible]
30-8-40

श्री मंत्री जी, आर्य प्रतिनिधि सभा नैटाल, (दक्षिण अफ्रीका)
डर्बन

नमस्ते

आपके [illegible] के आधार पर जो आपकी सभा की ओर से [illegible] [illegible] [illegible] २१ कार्लिस्ल स्ट्रीट (Carlisle Street) से किया गया है सभा ने अपने [illegible] ३४ [illegible] १०१ [illegible] [illegible] इस के लिये मैं आप का अत्यन्त आभारी हूँ। मैं ने इस धन का [illegible] प्रकार उपयोग [illegible] निश्चय किया है कि [illegible] सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा [illegible] दिल्ली के कोष के [illegible] और उस से [illegible] की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर विशेष कर अंग्रेजी भाषा में तथा अन्य भाषाओं में भी वैदिक धर्म सम्बन्धी [illegible] साहित्य निकाला जाय। पुस्तकों का नाम "दक्षिण अफ्रीका [illegible]" [illegible] [illegible] और [illegible]। इसके [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] लगाया जाय।

[illegible] इसके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। आशा है कि आपकी सभा तथा सार्वदेशिक सभा के [illegible] [illegible] होगा।

भवदीय
गंगाप्रसाद उपाध्याय

विषय-सूची

अध्याय	विषय			पृष्ठ
१—एक प्रश्न		...	...	५
२—'सनातन' शब्द का अर्थ		...	...	६
३—आर्य्य समाज और सनातन धर्म के सिद्धान्तों में भेद				६
४—मूर्ति पूजा		...	...	११
५—जाति भेद		...	...	१७
६—मृतक श्राद्ध		...	...	२४
७—आर्य्य समाज ने हिन्दू जाति के लिये क्या किया ?				२६
परिशिष्ट		...	...	३४

—:o:—

ओ३म्

सनातन धर्म और आर्य्य समाज

अध्याय १

एक प्रश्न

मेरी दक्षिणी अफ्रीका की यात्रा में मुझसे कई जगहों पर यह सवाल किया गया कि सनातन धर्म और आर्य्य समाज में क्या भेद है। दक्षिणी अफ्रीका में बहुत से लोग हैं जिनके बापदादे हिन्दुस्तान से चले गये थे, वे स्वयं कभी हिन्दुस्तान नहीं आये। यह लोग या तो व्यापारी हैं या खेती करते हैं। इन को विद्या पढ़ने का अवसर नहीं मिलता। संस्कृत या हिन्दी तो यह जानते ही नहीं। क्योंकि इस देश में अँगरेजी ही बोली जाती है। इन को अपने देश और धर्म से प्रेम तो है परन्तु विद्या कम होने के कारण इन को यह नहीं मालूम कि असली धर्म क्या है। कुछ लोग अपने स्वार्थ वश इन को बहका देते हैं कि तुम सनातनधर्मी हो तुम को आर्य्य समाज से अलग रहना चाहिये। इस प्रकार मैंने कई जगहों

पर देखा कि आर्य्य समाज और सनातन धर्म के लोग मिलकर काम नहीं करने पाते। दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दुओं की संख्या बहुत कम है। इसलिये जब यह थोड़े से लोग भी दो टुकड़ों में बँटे हुये हैं तो गैर लोगों को अवसर मिल जाता है। जब घर के दो दल लड़ते हैं तो तीसरा अवश्य ही उन पर अधिकार जमा लेता है। बहुत से लोग हिन्दूधर्म को छोड़कर ईसाई हो जाते हैं क्यों कि यहाँ ईसाई धर्म का प्रचार बहुत है। हिन्दुओं के जो थोड़े बहुत मन्दिर हैं उन में धार्मिक शिक्षा या धर्म प्रचार नहीं होता केवल चढ़ावा और पूजा पाठ होता है वह भी पुराने ढंग का। इस से नये युवकों को सन्तोष नहीं होता बहुत से बुद्धिमान पुरुष जिनको धार्मिक बातों की छानबीन का समय नहीं है यह प्रश्न पूछते हैं। अतः जरूरी जान पड़ता है कि इस सवाल पर कुछ प्रकाश डाला जाय।

अध्याय २

'सनातन' शब्द का अर्थ

'सनातन' शब्द का अर्थ है 'सदा एक सा रहने वाला'। इसीलिये ईश्वर को भी 'सनातन' कहते हैं। सनातन धर्म का अर्थ है वह धर्म या नियम जो कभी बदलें नहीं, सदा एक

से रहे। अथर्ववेद में 'सनातन' शब्द का यह अर्थ किया गया है :—

> सनातनमेनमाहुरताद्य स्यात् पुनर्णवः।
> अहो रात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः॥
>
> (अथर्व वेद १०।८।२३)

सनातन उसको कहते हैं जो कभी पुराना न हो सदा नया रहे। जैसे रात दिन का चक्र सदा नया रहता है।

इसके कुछ उदाहरण लीजिये। जो नियम सदा एक से रहें वे सनातन हैं, जैसे दो और दो चार होते हैं, यह सनातन धर्म है क्योंकि किसी युग में या किसी देश में यह बदल नहीं सकता। एक त्रिभुज की दो भुजायें मिलकर तीसरी भुजा से बड़ी होती है या एक त्रिभुज के तीनों कोण मिलकर दो समकोणों के बराबर होते हैं, यह सब सनातन धर्म है।

धर्म या नियम दो प्रकार के होते हैं एक सनातन और दूसरे सामयिक! सनातन बदलता नहीं। सामयिक बदलता है। जैसे जाड़े मे गर्म कपड़ा पहनना चाहिये। या ज्वर आने पर दवा खानी चाहिये। भोजन करना सनातन धर्म है क्योंकि किसी युग में भी बिना भोजन के शरीर की रक्षा नहीं हो सकती। लेकिन दवा खाना सनातन धर्म नहीं। यह तो कभी बीमार होने पर ही काम में आता है।

धर्म के दो रूप होते हैं। एक तो मूल तत्व जो सदा एक से

रहते है और दूसरी रस्मो रिवाज (Ceremonials) जो देश और काल के विचार से बदलते रहते हैं। जैसे किस समय कैसे कपड़े पहनना। यह रिवाज के अनुकूल होता है। यह धर्म का मुख्य अंग नहीं है।

बहुत से लोग मौलिक या असली धर्म और रिवाज या सामयिक धर्म को मिलाकर गड़बड़ कर देते हैं। इसीलिये बहुत सा भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

आजकल भारतवर्ष में जिसको सनातन धर्म कहते हैं उसमें बहुत से रस्मो रिवाज पीछे से मिल गये हैं। जैसे शुद्ध पानी दूर तक बहते बहते गदला हो जाता है इसी प्रकार सनातन धर्म का हाल है। इसमें कुछ तो भाग सनातन है और कुछ पीछे की मिलावट है। सब को सनातन धर्म कहना भूल है।

स्वामी दयानन्द ने जिस धर्म का प्रचार किया है वह शुद्ध सनातन वैदिक धर्म है। इस प्रकार आर्य्य समाज भी सनातन धर्म को मानता है। और उसमें और सनातन कहलाने वालों में कुछ भेद नहीं है। सब सनातन धर्मी वेदों को मानते हैं। आर्य्य समाजी भी वेदों को मानते हैं। महाभारत, रामायण, मनुस्मृति गीता आदि शास्त्रों में वेदों की महिमा पाई जाती है। यह पुस्तकें आर्य्य समाज के भी आदर का पात्र हैं! इसलिये आर्य समाज और सनातन धर्म के मूल तत्त्वों में कोई भेद भाव नहीं होना चाहिये। और बुद्धिमान लोग ऐसा ही मानते हैं। कुछ

निर्बुद्धि लोग रस्मो रिवाज के भेद को बढ़ाकर परस्पर द्वेष फैलाना चाहते हैं। यह ठीक नहीं। धर्म में बहुत सी बातें पीछे से मिला दी गई हैं, उनको छोड़ देना चाहिये। जैसे गंगाजल गंगोत्तरी पर शुद्ध और पवित्र होता है परन्तु हुगली नदी तक पहुँचते पहुँचते गदला हो जाता है। उसको छान कर मिट्टी निकाल देनी चाहिये इसी प्रकार पुराने वैदिक धर्म में जो गड़बड़ पीछे से मिला दी गई उसको भी शुद्ध करने की जरूरत है।

अध्याय ३

आर्य्य समाज और सनातन धर्म के सिद्धान्तों में भेद

हम ऊपर कह चुके हैं कि आर्य्य समाज सत्य सनातन वैदिक धर्म को मानता है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में जहाँ कहीं, वैदिक धर्म का उल्लेख किया है वहाँ उसको "सत्य सनातन वैदिक" धर्म, कहकर पुकारा है। इसलिये यह नहीं समझना चाहिये कि आर्य समाज को "सनातन" शब्द से चिढ़ है। यदि कोई आर्य्य भूल से ऐसा समझता है तो उस को यह भूल सुधार लेनी चाहिये।

'आर्य्य समाज' भी कोई नया शब्द नहीं है, हम लोग आजकल अपने को हिन्दू कहते हैं। परन्तु पुराने वैदिक या मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में भी न तो 'हिन्दू' शब्द पाया जाता है न हिन्दू धर्म की चर्चा मिलती है। हिन्दू शब्द तो विदेशी लोगों ने हमको दिया और उन्हीं ने हमारे धर्म को हिन्दू धर्म कहा। रामायण आदि में इस देश का नाम 'आर्यावर्त्त' या भारतवर्ष या भारतखण्ड था और यहाँ के लोगों को आर्य कहते थे। स्वामी दयानन्द ने उसी पुराने शब्द को अपनाया है। वैदिक साहित्य में 'आर्य्य' का अर्थ है ज्ञानी या श्रेष्ठ। 'समाज' का अर्थ है 'सोसायटी'। 'आर्य्य समाज' का अर्थ हुआ "श्रेष्ठ पुरुषों" की सभा या सोसायटी। जब आर्य्य शब्द अत्यन्त प्राचीन काल से चला आता है तो 'आर्य्य' शब्द से किसी सनातन धर्म को चौंकना नहीं चाहिये। 'हिन्दू' नाम सनातन नहीं है 'आर्य्य' नाम सनातन है। अतः जो सनातन धर्मी अपने को हिन्दू कहते हैं और 'आर्य्य' शब्द से चिढ़ते है उनको सोचना चाहिये कि वह कैसा उलटा काम कर रहे हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने नाम से कोई मत या सम्प्रदाय स्थापित नहीं किया। वह तो प्राचीन वैदिक ऋषियों के ही भक्त थे और उन्हीं के धर्म को संसार में फिर फैलाना चाहते थे, आजकल के सनातन धर्म और आर्य्य समाज के सिद्धान्तों मे मोटा भेद यह है :—

(१) आर्य्य समाजी मूर्ति पूजा नहीं करते। सनातन धर्मी मूर्ति पूजा करते हैं।

(२) आर्य्य समाजी मुर्दों का श्राद्ध नहीं करते, सनातन धर्मी करते हैं।

(३) आर्य्य समाजी ईश्वर का अवतार नहीं मानते। सनातन धर्मी मानते हैं।

(४) आर्य्य समाजी वर्ण जन्म से नहीं अपितु कर्म से मानते हैं। सनातन धर्मी जन्म से वर्ण मानते हैं।

यह चार मोटी मोटी बातें हैं। कुछ छोटे भेद भी हैं। इन पर अलग-अलग विचार होना चाहिये।

अध्याय ४

मूर्ति पूजा

क्या मूर्तिपूजा सनातन है? कदापि नहीं। यह बात तो आप मन्दिरों की मूर्तियों को देखकर ही जान सकते हैं। जितनी मूर्तियाँ हिन्दू मन्दिरों में पूजी जाती हैं वह किसी न किसी महापुरुष की होंगी। बहुत सी मूर्तियाँ तो श्रीकृष्ण जी महाराज की हैं जो भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न नामों

से पुकारी जाती हैं। स्पष्ट है कि यह मूर्तियाँ श्री कृष्ण जी महाराज के जीवन से पहले पूजी नहीं जाती थीं, श्री कृष्ण महाराज के बाप माँ, बाबा परबाबा इनको नहीं पूजते थे, उनको इन का पता भी नहीं था। इसी प्रकार श्री रामचन्द्र जी की मूर्ति श्री दिलीप या श्री रघु या श्री अज के जमाने में न थी और न कोई राम की पूजा जानता था। इसलिये साफ बात यह है कि श्री राम या कृष्ण की मूर्ति पूजना सनातन धर्म नहीं अपितु नया धर्म है। सनातन धर्म तो एक ईश्वर की पूजा है जिस का उपदेश ऋषि दयानद ने किया है। श्री रामचन्द्र और भगवान कृष्ण चन्द्र महात्मा, सत्यपुरुष, परोपकारी और ईश्वर भक्त थे, वे एक ईश्वर की पूजा करते थे। उन्हीं का अनुकरण सब मनुष्यों को करना उचित है, उनके मरने के पश्चात् उनको ईश्वर मान बैठना और ईश्वर की पूजा छोड़कर उनकी मूर्तियों को पूजना उन्हीं के मत के विरुद्ध है। यह एक नई प्रथा है सनातन नहीं। इस सृष्टि पर हर युग और हर देश में सत्यपुरुष उत्पन्न होंगे। वे संसार का उपकार करेंगे और अपनी सच्ची जीवनी छोड़ जायगे, यदि उनके बाद उनकी मूर्तियाँ पुजने लग जावें और ईश्वर की पूजा छूट जाय तो भिन्न-भिन्न जातियों के भिन्न-भिन्न इष्ट देव हो जायंगे और मनुष्य जाति अनेकों मतों और सम्प्रदायों में बट जायगी। इस से तो फूट पैदा हो

जायगी। आर्य्य समाज कहता है कि सनातन धर्म को मानो अर्थात् एक इष्ट देव की उपासना करो। देखो ऋग्वेद में लिखा हैं:—

अग्नि पूर्वेभिऋर्षिभिरीड्यो नूतनैरुत।

(मंडल १।१।२)

ईश्वर तो पुराने और नये सभी महात्माओं द्वारा पूजा करने योग्य है।

योगदर्शन में लिखा है:—

सएष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

(योगदर्शन १।१।२६)

वह ईश्वर पुराने लोगों का भी गुरु है क्योंकि काल या युग की अपेक्षा से उसमें तबदीली नहीं होती। इसीलिये ईश्वर को पूजने में किसी जाति में भेद भाव उत्पन्न नहीं होता और सनातन धर्म के नाम पर बट्टा नहीं लगने पाता। यदि हर एक परिवार अपने बुजुर्गों की मूर्तियाँ पूजने लगे अथवा कल्पना करके नई नई मूर्तियाँ बनाने लगे तो भिन्न भाव और लड़ाई झगड़े सदा पैदा होते रहेंगे, देखो सूरज एक है। उसपर किसी की लड़ाई नहीं होती। अपने अपने घर के दीपक अलग अलग हैं उनपर झगड़ा हो सकता है। यह प्राकृतिक सूरज तो रात को छिप जाता है और दीपक की जरूरत पड़ती है। ईश्वर रूपी सूरज तो कभी छिपता

नहीं। वह सदा चमकता रहता है। इसलिये उसे भूल जाना और उसके स्थान पर नये नये रूप गढ़लेना ठीक नहीं है।

आर्य्य समाज श्री रामचन्द्र और श्री कृष्णचन्द्र का आदर करता हैं, वे हमारे पूज्य थे। उन्होंने अपने सद् जीवन से हमको मार्ग दिखाया। उस पर हम को चलना चाहिये। उनके मार्ग पर न चलकर उनके नाम की रट लगाना और उनका सा जीवन न बनाकर उनकी मूर्तियों पर फल फूल चढ़ाना उनका आदर नहीं है, असली आदर करने में सनातन धर्मी और आर्य्य समाजियों में कोई अन्तर नहीं जो भेद पीछे से उत्पन्न हो गया है उसको छोड़ देना जरूरी है।

देखो जब वेदों का प्रचार था तब शिव, गणेश, विष्णु, वरुण आदि सब शब्द केवल उसी एक परमेश्वर के नाम थे। वेद में लिखा है।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।

(ऋग्वेद १।१६४।४६)

ईश्वर तो एक ही है उसके नाम बहुत से हैं। ईश्वर के अनेक गुण और अनेक कर्म है अतः हर एक गुण और कर्म का दरशाने वाला अलग अलग नाम होगा। जैसे यदि कोई एक ही पुरुष गुरु भी हो और डाक्टर भी तो उसको कभी गुरु कह कर पुकारेंगे और कभी डाक्टर कह कर।

उसके नामों में भेद होने के कारण आदमी में भेद न होगा। इसी प्रकार ईश्वर कल्याणकारी होने से "शिव" है। सबका मालिक होने से "गणेश", सबमें व्यापक होने से "विष्णु" है। सबसे वरण योग्य होने से "वरुण" है। ऐसा न मान कर लोगों ने इन नामों के अलग अलग देवते मान रक्खें हैं। इससे हिन्दुओं में कितने टुकड़े हो गये हैं। शिव को पूज कर अपने को शैव कहते हैं और शिवलिङ्ग की पूजा करते हैं। विष्णु के पूजक वैष्णव कहलाते हैं और विष्णु की अलग-अलग मूर्तियाँ बना रक्खी हैं। कभी कभी इन बातों पर लड़ाई झगड़े भी हो जाते है। फिर इन देवतों के विषय में अनेक प्रकार की बुरी बुरी कथायें गढ़ रक्खी हैं। इससे लोगों में अश्रद्धा पैदा हो हो गई है। हिन्दूसगठन के बनाने के लिये यह आवश्यक है कि इन बातों को छोड़ देवें। जिससे सबकी पूजा की एक रीति हो जाय और भेद भाव छूट जाय।

मूर्तिपूजा के कारण कई और दोष भी आ गये हैं :—

(१) जैसे पुजारी लोगों में लोभ बढ़ गया है। वे अपनी जेब भरने के लिये लोगों में झूठी बातों का प्रचार करते रहते हैं। उन्होंने बहुत सी कहानियां गढ़ ली हैं। वे राम और कृष्ण को पूजते नहीं। वे तो उनके नाम पर पैसा बटोरते और लोगों को धोखा देते हैं। इससे उनका भी परलोक बिगड़ता है और दूसरों का भी।

(२) लोगों ने मूर्तियों को पाकर एक निराकार ईश्वर का ध्यान करना छोड़ दिया है। सब लोग समझते हैं कि मन्दिर में मूर्ति के दर्शन तो कर लिये। अब क्या चाहिये? गायत्री आदि मंत्रों का जाप भी लोग नहीं करते।

(३) लोगों का दान भी अधिकतर मन्दिरों में जाता है। धनाढ्य लोग अलग अलग मन्दिर बनवा देते हैं। ग़रीबों को पढ़ाने या वैदिक पुस्तकों के प्रचार में अपने दान को नहीं लगाते। अतः हिन्दूजाति की अवनति हो रही है और लोग असली धर्म की बातों को भूल रहे हैं। इससे सनातनधर्म दिन प्रतिदिन घटता जाता है बढ़ता नहीं। राम और कृष्ण की सन्तान ईसाई या मुसलमान हो जाती हैं। और उनके चलन व्यवहार भी विदेशियों के से हो जाते हैं। उनमें अहिंसा की भावना भी नहीं रहने पाती। यह दोष तो तभी दूर होंगे जब आर्य्य समाजी और सनातनधर्मी सब एक होकर गायत्री आदि मंत्रों का जाप करेंगे। एक ईश्वर को पूजेंगे और वेद धर्म पर आरूढ़ होंगे। वेद ने कहा है:—

नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।

(यजुर्वेद ३१।१८)

कल्याण के लिये और कोई मार्ग है ही नहीं।

———

अध्याय ५

जाति भेद

लोग पूछते हैं कि हिन्दुओं में इतनी जातियाँ कैसे उत्पन्न हो गईं। क्या यह जातियाँ "सनातन" हैं? इस पर थोड़ा सा विचार कीजिये। वैदिक काल में मनुष्यों के चार वर्ण थे—ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मनुष्य जाति का यह विभाजन सनातन है, क्योंकि देश और जाति को ज्ञान, रक्षा और धन तीन चीजों की जरूरत सदा पड़ती है। जो लोग 'ज्ञान' बढ़ाने का मुख्य काम अपने जिम्मे लेते हैं वे "ब्राह्मण" कहलाते हैं। क्योंकि 'ब्रह्म' का अर्थ है 'वेद या ज्ञान'। जो रक्षा करने का भार अपने ऊपर लेते हैं वे "क्षत्रिय" कहलाते हैं। क्योंकि क्षत्रिय का अर्थ है क्षति से बचाने वाला। जो धन के उत्पादन में लगते हैं वे वैश्य कहलाते हैं। अब रहे साधारण व्यक्ति जो विशेष योग्यता नहीं रखते। यह ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के कामों में मदद देते हैं। अर्थात् वे पुस्तकें भी ढो सकते हैं, हथियार भी। और अनाज के बोरे भी। उनको स्वतंत्र काम करने की बुद्धि नहीं। वे दूसरों को उनके काम में सहायता दे सकते हैं। इनको "शूद्र" कहते हैं। शूद्र वह है जिसकी दशा शोचनीय हो। अर्थात् जो स्वयं अपनी उन्नति न कर सके। यह चार विभाग गुण कर्म स्वभाव के कारण हैं जन्म के कारण नहीं। दुनिया में

जो मनुष्य उत्पन्न होते हैं उनकी भिन्न भिन्न प्रवृत्तियाँ होती हैं। किसी की रुचि विद्या ग्रहण करने की अधिक होती है। कोई वीरता दिखाना चाहता है। कोई धन कमाने में चतुर होता है और कोई केवल दूसरों की सहायता कर सकता है। यह चार प्रकार का विभाग सनातन है। हर युग और हर देश में यही चार प्रकार के लोग होंगे। इसलिये यजुर्वेद (३१।११) में कहा था कि

(१) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत ।

(२) बाहू राजन्यः कृतः ।

(३) उरूतदस्य यद् वैश्यः ।

(४) पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

(१) ब्राह्मण मनुष्य जाति का मुख है। ज्ञान सब से मुख्य समझा जाता है।

(२) क्षत्रिय बांह है, बांह से ही रक्षा की जाती है।

(३) वैश्य जंघा है। व्यापार और खेती से धन बढ़ता है। 'जंघा' व्यापार की प्रतीक है।

(४) दोनों पैरों के लक्षणों के द्वारा 'शूद्र' की कल्पना की गई। क्योंकि पैर मुख की भी सेवा करते हैं भुजाओं की भी और जांघों की भी। इसी प्रकार ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों सभी को शूद्रों की जरूरत पड़ती है।

आरंभ में समाज का निर्माण इसी प्रकार हुआ था। उस समय हिन्दुओं में जातियाँ नहीं थीं। "वर्ण" थे। वर्ण' का अर्थ है "चुनना" (वृ-वरणे)। लोग अपनी रुचि के अनुसार अपने लिये काम चुन लेते थे। और समाज उनका उन्हीं गुणों के अनुसार आदर करता था। यह था शुद्ध सनातन धर्म के अनुसार समाज का संगठन। पीछे से इन वर्णों की सन्तान हुई और उसने आलस्य तथा प्रमाद में फँस कर आपने पूर्वजों के गुण कर्म तो छोड़ दिये परन्तु वे उसी आदर की चाह करते रहे, जो उनके बाप दादों का होता था। इस प्रकार जन्म-सिद्ध जातियां उत्पन्न हो गई। और इन में लड़ाई, झगड़े तथा भेद भाव बढ़ गये। इसको एक उदाहरण से देखिये। कल्पना कीजिये कि एक मनुष्य डाक्टरी करना चाहता है। वह मेडि-कल कालेज में दाखिल होता है। कई वर्ष तक परिश्रम करके परीक्षा पास करता है और डाक्टर बन जाता है। अपने गुणों और सद् व्यवहार के कारण उसका आदर भी होता है और उसको धन भी मिल जाता है। अब यदि उसका लड़का आलसी और नालायक़ निकल जाय तो वह अपने बाप के पद और धन दोनों की इच्छा करेगा और चाहेगा कि लोग उसको डाक्टर कहें क्योंकि उसका बाप डाक्टर था। उसके बाप ने तो परिश्रम करके डाक्टरी का पद पाया और यह बिना परिश्रम के ही पद चाहता है। यदि समाज उसको डाक्टर कहने लगे

तो समाज का काम तो नहीं चलेगा क्योंकि उसमें रोगियों के इलाज करने की योग्यता ही नहीं है। काठ के हाथी के समान उसका उपयोग ही क्या? इसी प्रकार हमारे आज कल के ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों का हाल है। उनके बाप दादों ने त्याग, तपस्या, ब्रह्मचर्य और विद्या प्राप्ति के द्वारा ब्राह्मण की पदवी पाई। यह लोग बिना किसी परिश्रम के अनायास ही अपने बाप-दादों के पदों के इच्छुक हो रहे हैं। यह सनातन धर्म तो नहीं है। यह तो नया धर्म है। आर्य्य समाज कहता है कि सच्ची वर्ण—व्यवस्था स्थापित करो। अर्थात् जैसा जिसमें गुण हो उसको वैसा मानो। यदि ब्राह्मण का लड़का धन कमाता है तो उसे वैश्य कहो ब्राह्मण क्यों कहते हो? यदि क्षत्रिय का लड़का मजदूरी करता है तो उसे शूद्र कहो क्षत्रिय क्यों कहते हो। यदि मजदूर का लड़का वेदपाठी है तो उसे ब्राह्मण कहो शूद्र क्यों कहते हो? गलत नाम धरने से समाज में धोखा पैदा होता है और ढोंग बढ़ जाता है। यदि किसी वैद्य का लड़का या पोता वकील बन जाय और अपने को मिस्टर वैद्य कहे तो धोखा होगा क्योंकि अब वह 'वैद्य' की कोटि से निकल गया।

अब रही भेद भाव की बात! भेद दो प्रकार का है 'रोटी' का और 'बेटी' का' अर्थात्, भोजन करना और विवाह सम्बन्ध करना, पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों और शूद्रों में रोटी का भेद नहीं था। छूत छात न थी। सब लोग सब का

छुआ खा लेते थे। पकाने का काम प्रायः शूद्र करते थे, दक्षिण अफ्रीका में तो खान-पान का भेद भाव बिल्कुल मिट गया है। सब सबके हाथ का पकाया खाते हैं, यह अच्छी बात है। केवल अभक्ष्य का परहेज करना चाहिये अर्थात् मांस और शराब से बचना चाहिये। यह बुरी बात है कि अफ्रीका में शराब का प्रचार बढ़ता जाता है। यह दूसरी जातियों के अनुचित अनुकरण के कारण है। सनातन धर्म और आर्य्य समाज दोनों को मिलकर इस दोष को दूर करना चाहिये। जब भारतवर्ष में १८७५ ई० में आर्य्य समाज की स्थापना हुई थी उस समय हिन्दुओं में यह छूत छात का रोग बहुत था: और समुद्र को पार करने से ही लोग जाति से अलग कर दिये जाते थे। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के दसवें समुल्लास में इस का प्रबल खण्डन किया है। ईश्वर को धन्यवाद है कि अफ्रीका के सनातन धर्मी तो समुद्र की यात्रा करके ही यहाँ तक पहुँचे हैं। वे समुद्र यात्रा को पाप नहीं मानते। इस बाबत उन्होंने आर्य्य समाज की बात को पूरा पूरा मान लिया है। 'बेटी' का सम्बन्ध भी अफ्रीका में अब उतना कड़ा नहीं है। योग्य वर और कन्या को देखकर विवाह होना चाहिये। इस विषय में भी वर और कन्या के गुणों को देखना चाहिये जन्म को नहीं।

इस विषय में सनातन धर्म और आर्य्य समाज में इतना

भेद नहीं है, जो है भी वह कम हो रहा है। और यदि छोटी छोटी बातों पर झगड़ा करना छोड़ दिया जाय तो यह भेद और कम हो जायगा।

एक बात और याद रखनी चाहिये। विवाह, नामकरण, अन्त्येष्टि आदि संस्कारों में ब्राह्मण पुरोहितों की ज़रूरत पड़ती है। ब्राह्मण वह है जो ब्राह्मणों के से गुण रखे। अतः संस्कार कराने के लिये उन लोगों को चुनना चाहिये जो संस्कार कराने में निपुण हों चाहे वह ब्राह्मण बापदादों की सन्तान हो चाहे दूसरे हों। केवल जन्म परक ब्राह्मण मानने से अविद्या, पाखण्ड, लोभ, आलस्य और आडम्बर बढ़ता है। पुरोहितों को लोभी नहीं होना चाहिये।

लोभी गुरु लालची चेला दोनों खेलें दांव।
भवसागर में डूबते बैठ पथर की नाव॥

जो पैसे-पैसे के लिये सिर चीरते हैं और संस्कार कराने वालों को दिक करते हैं वे ब्राह्मण नहीं हैं। ब्राह्मण के लिये लोभ सब से घातक अवगुण है। हाँ लोगों को सच्चे ब्राह्मणों का सत्कार अपनी योग्यता के अनुसार अवश्य करना चाहिये। यदि निर्धन घरानों में संस्कारों की ज़रूरत पड़े तो योग्य ब्राह्मणों को बिना संकोच के दक्षिणा का लोभ किये बिना ही उचित संस्कार करा देने चाहिये। जिससे धार्मिक कृत्य कराने में किसी को असुविधा न हो।

पुरोहित और यजमान दोनों को चाहिये कि संस्कारों के मूल तत्वों पर दृष्टि रक्खें। आडंबरों को बढ़ने न देवें। दूसरे लोगों को भी इस विषय में कोशिश करनी चाहिये।

मैंने कहीं-कहीं दक्षिणी अफ्रीका में भ्रमण करके देखा कि कुछ ऊंच जातियाँ पुरानी रूढ़ियों के अनुसार दूसरे हिन्दू भाइयों से घृणा करतीं और उनसे अलग रहती है. इससे हिन्दू संगठन में बाधा होती है। यदि कोई नीच जाति का पुरुष अपने परिश्रम से बढ़ जावे और धन तथा विद्या में सम्पन्न हो जाय तो यह अच्छी बात है बुरी नहीं। वह प्रशंसा का पात्र है घृणा का नहीं। उसका उत्साह बढ़ाना चाहिये और उसको समाज में अच्छा आसन देना चाहिये। यह नहीं कहना चाहिये कि इस के बाप दादे नीच या गरीब थे। अब यह बढ़ गया तो हम इस का आदर क्यों करें। गिरतें को उठाना और चढ़ते को बढ़ाना हमारा कर्त्तव्य है। आर्य्य समाज यही चाहता है। और सनातन धर्मियों का कल्याण भी इसी में है।

कुछ लोग अभी तक यही मानते चले आते हैं कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख से पैदा हुये. क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जंघों से और शूद्र पैरों से, इसीलिये वे शूद्रों को नीच या अछूत समझते है, परन्तु हम ऊपर दिखा चुके हैं कि वेद मंत्र का यह आशय नहीं है। वहाँ तो साफ लिखा है कि ब्राह्मण समाज का मुख है।

ईश्वर तो निराकार है। उसके न मुख है न बाहू, न जंघा न पैर। तुलसीदास जी कहते हैं

विनु पद चले सुने बिनु काना।
विनु कर कर्म करे विधि नाना॥

ईश्वर के पैर नहीं वह चलता है। कान नहीं वह सुनता है। हाथ नहीं, वह काम करता है।

सनातन धर्मियों को चाहिये कि बहुत सी प्रचलित कपोल कल्पित गप्पों को छोड़ देवें। सचाई की तलाश कीजिये। कहानियों के भ्रमजाल में न पड़िये। मोटी मोटी बातें तो अक्ल से ही परख ली जा सकती हैं।

अध्याय ६

मृतक श्राद्ध

आर्य्य समाज और वर्तमान सनातन धर्म में एक भेद मृतक श्राद्ध भी है। अर्थात् सनातनधर्मी लोग मृतकों को पिंडा देते या उनका श्राद्ध करते हैं। आर्य्य सामाजी नहीं करते। इस बात पर प्रायः झगड़ा तो नहीं होता। परन्तु प्रसंग वश इसको भी लिखा जाता है।

आर्य्य समाजी और सनातनधर्मी दोनों मनुस्मृति के बताये हुये पंच महायज्ञों को मानते हैं। उन महायज्ञों में एक

है "पितृ यज्ञ"। मनु महाराज ने पितृ यज्ञ का यह लक्षण किया है :—

कुर्य्यादहरहा श्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥

(मनु० ३।८२)

अर्थात् प्रेम पूर्वक पितरों को बुलाकर अन्न, जल, दूध, फल आदि से उनका श्राद्ध करे।

इससे स्पष्ट है कि पितृ यज्ञ का अर्थ मुर्दों का श्राद्ध नहीं है अपितु जीवित मां बाप का है।

कुछ लोग अनपढ़ लोगों को बहका देते हैं कि पितर नाम मरे हुये मा बाप का ही है। परन्तु यह तो सरासर आँखों में धूल डालना है। संस्कृत 'पितृ' शब्द के ही पिता, पितरौ, पितरः ऐसे रूप चलते है, एक बचन में 'पिता', द्विवचन में पितरौ और बहुवचन में 'पितरः'।

सनातन धर्मी और आर्य्य समाजी दोनों मानते हैं कि पुनर्जन्म होता है। जब कोई प्राणी मर जाता है तो अपने कर्मों के अनुसार वह दूसरा जन्म ग्रहण कर लेता है। मुसलमान और ईसाई लोग तो ऐसा मानते हैं कि रूहें मरने के बाद कबर में या किसी विशेष स्थान पर जमा रहती हैं परन्तु सनातन धर्म का तो यह मत नहीं है। जब जीव ने दूसरा जन्म ले लिया तो

श्राद्ध का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि कोई अपने मरे हुये बाप को कुछ खिलाना भी चाहे तो कैसे खिलावे। वह जानता ही नहीं कि उसका बाप कहाँ और किस योनि में है। जिन लोगों को आप उन मरे हुये पितरों के नाम पर खिलाते हैं उनसे पूछिये तो सही कि आप इस भोजन को हमारे पितरों तक कैसे पहुँचायेंगे। और कैसे सिद्ध करेंगे कि हम वस्तुतः इन चीजों को पहुँचा आये। आप जब कहीं को एक पारसल भेजने लगते हैं तो रसीद चाहते हैं और पारसल के पहुँच जाने पर भी पहुँचने का प्रमाण चाहते हैं। फिर कैसे आश्चर्य की बात है कि मरे हुये मां बाप तक भोजन पहुँचाने के लिये आप किसी अल्ले मल्ले का विश्वास कर लेते हैं। यह तो दान भी नहीं अपितु मूर्खता है। दान के लिये ज्ञान चाहिये। अज्ञान के आधार पर दिया हुआ दान दान नहीं. इससे भ्रांति और ठगी बढ़ती है। इसके अतिरिक्त याद रखना चाहिये कि सनातन धर्म का मुख्य सिद्धान्त है कर्म फलवाद। जो जैसा करता है वह वैसा पाता है। जो मर गये उनको ईश्वर उनके कर्मों के अनुसार फल देता है, आपको उनकी क्या चिंता है ? वह तो आपकी पहुँच से बाहर हो गये। आप जीवित लोगों की चिंता कीजिये। जिन विचारों को खाने की जरूरत है और आप खाना दे सकते हैं उनको तो आप खाना देते नहीं, जिन तक आप की पहुँच नहीं उनकी चिंता करते हैं।

जियत पिता से दंगं दंगा।
मरे पिता पहुँचाये गंगा।

सनातन धर्मी पण्डितों को चाहिये कि वे मृतकों का श्राद्ध खाना छोड़ दें। इससे उनका आत्मा कलुषित होता है और उनमें ढोंग और लोभ की आदत बढ़ जाती है। उनका ब्राह्मणत्व नष्ट होता है। मीठे-मीठे भोजन के लोभ से किसी को धोखे में रखना ठीक नहीं, यदि कोई मनुष्य मुझसे कहे कि आप अमुक चीज को अमुक मनुष्य तक पहुँचा देवें और मैं जानता हूँ कि मैं उसको पहुँचा न सकूंगा तो मेरा कर्तव्य हो जाता है कि उसको लेने से इनकार कर दूं। यदि लोभ में फँसकर मैं उसे ले लेता हूँ और अपने काम में ले आता हूँ तो मैं ठगी और धोखे का भागी होता हूँ। भारतवर्ष की वर्तमान अधोगति का एक मुख्य कारण यह भी हुआ है कि उन लोगों ने दक्षिणा यें लीं जो दक्षिणा के अधिकारी न थे। और जिस काम को वे नहीं कर सकते थे उसके लिये भी उन्होंने पुरस्कार या फीसें ग्रहण कर लीं। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्रों में काला बाजार या ब्लैक मार्केट बढ़ता गया। लोग धोखे में रहे। किसी ने शनिश्चर देवता के नाम पर दान मांगा और घर में रख लिया। किसी ने राहु और केतु के नाम पर मांगा और स्वयं खा गये। किसी ने मृतपितरों के नाम पर मांगा। और स्वयं हड़पलिया। किसी ने मूर्तियों के नाम पर प्रसाद चढ़वाये और अपने पेट में रख

लिये। यदि उनको मांगना ही था तो सीधे अपने नाम पर मांगते। जिसको देना होता वह दे देता। उन्होंने ढोंग क्यों बनाये और बहाना क्यों किया। इसी को तो ब्लैक मार्केटिंग कहते हैं। यदि तुम विद्योपार्जन के लिये धन मांगते हो तो सीधा कहो। यदि वेद प्रचार के लिये मांगते हो तो स्पष्ट बता दो। यदि यज्ञ करने के लिये मांगते हो तो उसे यज्ञ में व्यय करो। दान देने वालों को धोखा देकर दान लेना दान देने वाले और दान लेने वाले दोनों के लिये बुरा है। इससे तीन बड़ी हानियाँ होती हैं। लेने वाले को झूट का पाप लगता है। दान दाता का दान सफल नहीं होता। और झूठी परिपाटी जारी हो जाती है। ऐसा धोखा देना अच्छे आदमियों का काम नहीं। 'पुरोहित' का अर्थ यह है कि यजमान के हित को सामने रक्खे। जो यजमान को धोखा देकर धन लेवे वह तो पुरोहित नहीं है। ऋग्वेद के पहले मंत्र में भगवान को 'पुरोहित' कह कर पुकारा है। पुरोहित बड़ा पवित्र और आदर के योग्य नाम है। इसको बिगाड़ना नहीं चाहिये।

कुछ लोगों ने एक गप उड़ा रक्खी है कि जब मनुष्य मर जाता है तो उसका जीव कुछ दिनों तक इधर-उधर भटकता रहता है और कभी कभी अपने घर और परिवार के लोगों के आस पास घूमता है। यदि उसके लिये पिंड दे दिये जायं तो वह तृप्त हो जाता है। यह सब झूठी बात है। जीव शरीर को

स्वयं नहीं छोड़ता। ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार छोड़ता है। ईश्वर पहले से ही व्यवस्था कर देता है कि किस जीव को कहाँ जाना है। देखो जब कोई कैदी एक जेल से दूसरे जेल को बदला जाता है तो उसको इधर उधर घूमने की आज्ञा तो नहीं होती। एक जेल छोड़ने से पहले ही दूसरी जेल की पूरी व्यवस्था हो जाती है। अतः यह कहना कि मरने के बाद जीव कुछ दिनों इधर उधर बिना व्यवस्था के फिरता रहे ईश्वर पर दोष लगाने के समान है।

अध्याय ७

आर्य समाज ने हिन्दू जाति के लिये क्या किया ?

हमने गत अध्यायों में संक्षेप से सनातन धर्म और आर्य्य समाज के प्रचलित मत भेदों का मोटामोटा वर्णन कर दिया है। यह भेद रहते हुये भी यह संभव है कि दोनों मिलकर संस्कृति की उन्नति में लग जावें। जब उद्देश्य एक होता है तो साथ काम करने का कोई न कोई मार्ग निकल आता है और छोटे मतभेद आप ही आप दूर हो जाते हैं। जैसे कल्पना कीजिये कि आर्य्य समाजी और सनातन धर्मी दो सज्जन ईश्वर प्राप्ति के लिये चलते हैं। उनका उद्देश्य एक है। सनातन धर्मी मूर्तिपूजक

है और आर्य्यसमाजी मूर्तिपूजक नहीं। अब यदि सनातन धर्मी मूर्ति पूजा करके ईश्वर की प्राप्ति करने में सफल हो जाय तो उसको बधाई है। यदि न हों तो वह स्वयं उस मार्ग को छोड़ देगा। झगड़ा इसलिये होता है कि ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा तो है नहीं। बिना उद्देश्य के विवाद खड़ा किया जाता है। यदि एक आर्य्य समाजी संध्या नहीं करता तो उसको मूर्ति खण्डन करने से क्या लाभ? जो पानी में घुसना नहीं चाहता और खाट पर बैठे बैठे तैरने के विषय में विवाद करता है उससे तो किसी को कुछ लाभ नहीं हो सकता। आजकल दुनियाँ में मुक्ति के लिये परिश्रम कोई नहीं चाहता। सस्ती मुक्ति चाहते हैं। ऐसी सस्ती मुक्ति चाहने वालों के लिये ठग भी मिल जाते हैं। कोई किसी 'नाम' का जप बता देता है। कोई किसी तीर्थ की यात्रा का माहात्म्य लिख देता है। कोई कान में मंत्र फूँक कर गुरू बन बैठता है, कोई अनोखे तमाशे दिखाकर लोगों को वश में करना चाहता है। और लोग भी कैसे भोले भाले हैं कि झट से किसी न किसी जाल में फंस ही जाते हैं। वे यह नहीं पूछते कि जो सच्चा योगी या ईश्वर भक्त होगा वह धन के लिये तमाशा क्यों दिखाता फिरेगा। जो सच्चा साधु होगा वह विषय भोग या कांचन वा कामिनी के फंदे में क्यों फँसेगा।

आर्य्य समाज और सनातन धर्म में एक बड़ा भेद दृष्टि-

कोण का है। उसका विचार कर लेना चाहिये। जब स्वामी दयानन्द ने आर्य्य समाज स्थापित किया तो उन्होंने कहा कि आजकल जिसको हिन्दू धर्म कहते है वह प्राचीन सनातन वैदिक धर्म से विपरीत है। इसमें बहुत कुछ दोष मिल गये हैं। इनको निकाल कर शुद्ध वैदिक धर्म को ग्रहण करना चाहिये। लकीर के फकीर पंडितों को यह बात पसन्द नहीं आई। वे पुरानी प्रथाओं को बदलना नहीं चाहते थे। इसलिये उन्होंने आर्य्य समाज के विरोध में सनातन धर्म सभा नाम की संस्थायें स्थापित कीं और अपना नाम सनातन धर्म रक्खा। परन्तु पिछले पचहत्तर वर्षों में आर्य्य समाज ने जो काम किया उससे सिद्ध होता है कि सनातन धर्मियों ने भी उन परिवर्तनों को मान लिया जो आर्य्य समाजी करना चाहते थे। अर्थात् उनको अपने मार्ग से हट कर आर्य्य समाज के मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा। जैसे आजकल कोई सनातन धर्मी यह नहीं मानता कि जो दस वर्ष की कन्या का विवाह न करे वह नर्क को जाता है। या स्त्रियों को वेद या अन्य विद्यायें नहीं पढ़ानी चाहिये, या बाल विधवा का विवाह नहीं करना चाहिये। या ईसाई मुसलमानों की शुद्धि करना पाप है। या समुद्र की यात्रा नहीं करनी चाहिये। या अछूत जाति को नहीं उठाना चाहिये। या 'नमस्ते' करना बुरा है। पहले काल मे इन्हीं बातों पर आर्य्य समाज और सनातन धर्म के लोगों में झगड़े होते थे। अब तो

दोनों एक ही बात को मानते हैं। सची बात तो यह है कि जो बातें स्वामी दयानन्द ने कहीं थीं वह सब ठीक थीं। उनके माने बिना काम तो चल नहीं सकता। एक न एक दिन उसी मार्ग पर आना पड़ेगा। यदि जल्दी मार्ग पर आ गये तो अच्छा है। देर करने में बहक जाने का डर है।

सनातन धर्मी लोग अब तक समझते थे कि हिन्दू जाति पर जो आपत्तियाँ आईं वह कलियुग के कारण थीं। वे कहा करते थे कि यह युग का प्रभाव है। इसलिये वह पुरुषार्थ को छोड़ बैठे थे। जिन जातियों में पुरुषार्थ था वे आगे बढ़ गईं। यह कलियुग की ही रट लगाते रहे। स्वामी दयानन्द ने कहा कि सनातन धर्म तो कलियुग या किसी विशेष युग के आधीन नहीं होता जो कलियुग के प्रभाव में फँस जावे वह सच्चा सनातन धर्म नहीं है। अतः पुरुषार्थी बन कर आगे बढ़ो।

कुछ लोग 'भाग्य' और 'ईश्वर-इच्छा' का बहाना बना कर हाथ पर हाथ रक्खे बैठे हुये थे। उनका बहाना था कि यदि हमारी तकदीर बुरी न होती तो ऐसा क्यों होता? ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी। स्वामी दयानन्द ने बताया कि ईश्वर की कभी यह इच्छा नहीं हो सकती कि तुमको दुःख मिले। ईश्वर तो सब का मित्र है। सब के हित की बात करता है। जो जैसा करता है वह वैसा पाता है। फल कर्म के आधीन है। कर्म फल के आधीन नहीं। पुरुषार्थ से भाग्य बनता है। जो आलसी

बन कर बैठा है उसको ईश्वर आलस के बदले अच्छा फल नहीं दे सकता। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने हिन्दू जाति को कलियुग की गुलामी से छुड़ाया। भाग्य की जंजीरों से मुक्त किया। नक्षत्रों के जाल से निकाला। कर्म के सिद्धान्त का महत्व समझाया। पुरुषार्थ का मंत्र पढ़ाया। अन्धविश्वास को हटा कर विद्या और ज्ञान का मार्ग दिखाया। सब से बड़ी बात स्वामी दयानन्द ने यह कही कि तुम मेरे या किसी एक आदमी के कहने पर मत चलो। सत्य की खोज करते रहो। और असत्य को त्यागने और सत्य को मानने के लिये सदा उद्यत रहो। यही सच्ची ईश्वर भक्ति है। यही सच्चा सनातन धर्म है। इसी से सब का कल्याण होगा।

———

परिशिष्ट

आर्य्य समाज का संक्षिप्त परिचय

आर्य्य समाज की स्थापना सन् १८७५ ई० में बम्बई नगर मे हुई। इसके संस्थापक ऋषि दयानन्द का वेदों तथा आर्यों की संस्कृति मे अटल विश्वास था। उनकी इच्छा थी कि संसार मे पुनः वेदों का प्रचार हो। ऋषि की मृत्यु के उपरान्त आर्य समाज ने उनके पवित्र सिद्धान्तो का जनता में प्रचार किया।

पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी एम०, ए० महात्मा हंसराज, लाला लाजपति राय ने ऋषि की स्मृति मे दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज लाहौर की स्थापना की। इसके अनुकरण स्वरूप देश मे अनेकों कालिज तथा स्कूल खोले गये जहाँ पर सरकारी शिक्षा के साथ साथ धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। इसके पश्चात् देश मे अनेकों गुरुकुल खुल गये जिनमे प्राचीन ब्रह्मचर्य-पद्धति के अनुसार शिक्षा दी जाती है।

अपने जन्म-काल से ही आर्य समाज वैदिक धर्म के प्रचार मे बराबर लगा हुआ है। इस समय भारतवर्ष में तथा अन्यत्र आर्य समाजों की संख्या ३००० तक पहुँच चुकी है।

भारतवर्ष से बाहर अफ्रीका, अरब, फारस, अफगानिस्तान बिलोचिस्तान, मेसोपटामियाँ, असीरिया, जर्मनी, इग्लैण्ड, अमेरिका, सिंगापुर, ब्रह्मा. स्याम. अनाम, कम्बोडिया, हांगकांग (चीन) में भी आर्य्य समाज खुले हुये हैं।

आर्य्य समाज के दस नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते है उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करना योग्य है।

३—वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है; वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य

उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीति-पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब परतन्त्र रहें।

आर्य्य समाज के सिद्धान्त

ईश्वर

(१) ईश्वर निराकार है अर्थात् उसकी कोई मूर्त्ति नहीं है और न बन सकती है।

(२) मूर्त्ति पूजा करना पाप है।

(३) ईश्वर अवतार नहीं लेता। श्री रामचन्द्र तथा श्री कृष्ण आदि महात्मा थे ईश्वर के अवतार नहीं।

(४) ईश्वर न कभी पैदा होता है और न कभी मरता है।

(५) ईश्वर एक है।

जीव

(१) जीव ईश्वर से अलग चेतन सत्ता है।

(२) जीव न जन्म लेता है और न मरता है।

(३) ईश्वर एक और अनन्त है। जीव अनेक और सान्त हैं। इनकी शक्ति अल्प और ज्ञान भी अल्प हैं।

(४) जीव एक शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर में चला जाता है।

(५) जीव जैसा काम करता है उसको वैसी योनि मिलती है।

(६) जीव के कर्मों का ईश्वर न्याय करता है।

(७) अगर जीव आनन्द चाहता है तो उसे ईश्वर की शरण में जाना पड़ेगा।

प्रकृति

(१) प्रकृति सदा से रहने वाली है और सदा से रहेगी। यह जड़ है।

(२) ईश्वर प्रकृति से सारे संसार को रचता है।

(३) प्रकृति की सभी चीजें सूर्य, चन्द्र पृथ्वी आदि नियम से चलती हैं। संसार में ऐसी कोई चीज नहीं जिसको जादू कह सकते हैं। सब चीज नियम से ही होती हैं। नियम बदलते नहीं सदा एक से रहते हैं।

वेद तथा अन्य ग्रन्थ

जब सृष्टि बनी तो ईश्वर ने वेदों का ज्ञान चार ऋषियों के द्वारा दिया। वेद के चार पुस्तक हैं—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद। वेद ज्ञान के भंडार हैं, अगर ईश्वर ज्ञान न देता तो प्राणियों को कैसे ज्ञान होता। वेदों को पढ़ने का अधिकार सब नर नारियों का है।

उपवेद—चारों वेदों के चार उपवेद। अर्थवेद ऋग्वेद का धनुर्वेद यजुर्वेद का, आयुर्वेद अथर्ववेद का और गन्धर्ववेद सामवेद का उपवेद है।

ब्राह्मण—वेदों की यज्ञ-सम्बन्धी व्याख्या ब्राह्मणों में की गई है। ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण, यजुर्वेद का शतपथ, सामवेद का साम ब्राह्मण और अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण।

दर्शन—कपिल का सांख्य, गौतम का न्याय, पतञ्जलि का योग, कणाद का वैशेषिक, व्यास का वेदान्त और जैमिनि का मीमांसा दर्शन।

उपनिषद्—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक।

परन्तु इन ग्रन्थों में भी यदि कोई बात वेदों के प्रतिकूल होगी तो माननीय नहीं है। वेद स्वतः प्रमाण हैं। अन्य ग्रन्थ परतः प्रमाण।

वर्ण

वर्ण चार हैं (१) ब्राह्मण, (२) क्षत्रिय, (३) वैश्य, (४) शूद्र। वर्ण जन्म से नहीं कर्म से होता है। यदि ब्राह्मण का पुत्र शूद्र का काम करेगा तो वह शूद्र हो जावेगा। यदि शूद्र का पुत्र ब्राह्मण के काम करेगा तो वह ब्राह्मण हो सकेगा।

आश्रम

आश्रम चार हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास।

स्त्रियां

स्त्रियों का आदर करना चाहिये। स्त्रियों को वही आदर मिलना चाहिये जो पुरुषों को प्राप्त है। पर्दा करना बुरा है। स्त्रियाँ पढ़ सकती हैं, यज्ञ कर सकती हैं, और उपदेश दे सकती हैं।

भक्ष्याभक्ष्य

मांस भक्षण करना पाप है क्योंकि इससे हिंसा होती है। शराब, भङ्ग तथा और नशीली चीजें नहीं खानी चाहिये।

कुरीति निवारण

आर्य समाज कुरीतियों को दूर करने की कोशिश करता है। स्त्रियों को शिक्षा देना, बाल विधवाओं का विवाह कराना, विवाहों में दहेज बंद करना, छूत-अछूत के भेद भावों को दूर करना।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

APPENDIX

The Arya Samaj and the International Aryan League

THE ARYA SAMAJ

"Arya Samaj" is a Sanskrta compound of two words '*arya*' and '*samaja*'. 'Arya' means a righteous man, high-souled, a man possessed of noble qualities. In common parlance '*arya*' is a rough synonym of 'gentleman'. In ancient Sanskrta literature '*arya*' was the most honourable term with which you could accost another person. *Samaja* means a society or organisation. Thus 'Arya Samaj means a society of persons who mean to be good and to make others good.

So much about the etymology of the word. Technically speaking, the Arya Samaj is an organisation founded in 1875 by Swami Dayanand with the following ten principles :—

1. Of all true knowledge and whatever is known from knowledge, the Primary Cause is God.

2. God is an embodiment of truth, intelligence and bliss, and one without form, all-powerful, just, kind, unborn, infinite, unchangeable, beginningless, incomparable, support of all, lord of all, all-pervading, omniscient, undeteriorable, immortal, fearless, eternal, holy and the Creater of the Universe. He alone is worthy of worship.

3. The Vedas are the books of all true knowledge. It is the paramount duty of all Aryas to read them, to teach them, to hear them and to preach them.

4. We should be ever ready to accept truth and renounce untruth.

5. Everything should be done according to Dharma, that is, after considering what is truth and what is untruth.

6. The chief object of the Arya Samaj is to do good to the world, *i.e.*, to make physical, spiritual and social improvement.

7. We should treat all with love, and justice according to their deserts.

8. We should dispel ignorance and diffuse knowledge.

9. Nobody should remain contented with his personal progress. One should count the progress of all as one's own.

10. Every one should consider oneself as bound in obeying social and all-benefiting rules but every one is free in matters pertaining to individual well-being.

The first two principles indicate that the Arya Samaj is first *a religious* movement, secondly, *a theistic* movement and thirdly a *monotheistic* movement.

The third principle shows that the Vedas are its religious scriptures, that is, it has doctrinal connection with the old scriptures of the Aryas[*]. Principles 4 and 5 emphasize not only a regard for truth but a regard for the *search for truth.* They enjoin the members to remain seekers after truth for their whole life, and whenever they find that they were hitherto entertaining untruth, they should be ready to discard it. It is a question of mental attitude.

This makes the organisation *rationalistic.* How can a religious move ent believing i some

revelation, be consistently rational is a question which we can not deal with here. Suffice to say that an Arya Samajist should not do anything that is irrational. The remaining five principles deal, directly or indirectly, with the duties which a man owes to other beings in this world. Religion for an Arya Samajist is not an exclusively individual affair. Nothing is isolated in the world, even the world itself is not isolated. We are a part of a greater whole and our place in this whole has to be determind and constantly kept in view in the performance of our religious duties. Religion, as referred to in these principles is something that establishes an adjustment between the whole and the part without sacrificing or under-rating the one or the other. We cannot say that the universe is only a bundle of selves and that the development of these separate selves means the development of the whole. This would be sacrificing the whole at the altar of the parts. Nor can we say that each part has, as its function, only the growth of the whole and that it has nothing individualistic apart from the interests of the whole. This would mean ignoring the part for the sake of the whole. The Arya Samaj does not subscribe to either of these two views. According to it, the truth lies somewhere between the two extremes. Religion is no doubt the concern of us

individuals. But we are not isolated beings, arbitrarily put together by some external agency. We are tied down by natural and inseparable relations and our individual well-being is not at all conceivable, much less realisable, except through the well being of others.

THE SCRIPTURES OF THE ARYA SAMAJ

The most sacred scriptures of the Arya Samaj are the four Vedas, Rig Veda, Yajur Veda, Sama Veda and Atharva Veda.

Swami Dayanand the founder of the Arya Samaj has written several books to elucidate the tenets of the Vedic Religion of which the most noteworthy are the following :—

(*a*) His commentary on the Rig Veda upto the 62 Hymn of the Mandala VII, the remaining being left unfinished.

(*b*) His commentary on the Yajur Veda.

(*c*) The Intruduction to the commentary to the Rig Veda etc., which is a fairly big book, discussing the principles of interpreting the Vedas.

(*d*) The Satyarthaprakasha (Light of Truth), his magnum opus discussing almost all points of religion.

(*e*) Sanskaravidhi, a book of rituals.

(*f*) Gokarunanidhi, denouncing slaughter of cows and other animals and emphasising the importance of non-violence.

THE WORK OF THE ARYA SAMAJ

The Arya Samaj does not believe in isolated abstract spirituality. Its duty to God includes its duty to mankind—nay to all living beings. Ever since its inception it began to take a living interest in the affairs of the society. Before the advent of the Arya Samaj, the prevailing idea among the Hindus was that the crucial test of a man's piety is his indifference to the problems of the world.

But the Arya Samajist believes that the best way of loving his Creator is to begin with the love for His creation. This strong conviction you will find pervading through all the activities of the Arya Samaj. We give here a very brief account.

(1) Social Service

The social service of the Arya Samaj began with the abolition of evil customs. Customs are national habits and they are the strongest fetters to break. A family will gladly court poverty or undergo serious troubles, but it would not dare to abolish a long-standing custom. If any body does so, he must be ready to face communal censure.

(*a*) The first evil customs which attracted the attention of early Arya Samajists were in connection with marriage, the principal ones being fireworks and dance by prostitutes and early marriage. Now those evils are all gone.

(*b*) Dowry is another evil. The bridegroom demands a fixed sum from the bride's father at the time of marriage. In certain communities this evil is very horrible. To have a daughter in the family is to constantly burn in the fire of hell. The Arya Samaj has been trying its best to uproot this evil and much has been done, though not enough.

(*c*) The next item is Social Reconstruction. The Hindu society is split up into totally unconnected castes—a congeries of independent and independable units whose one work was to emphasize their importance and to look down upon others. The fourfold organic division of the society into Brahmanas, Ksattriyas, Vaisyas and Shudras corresponding to the fourfold division of the human body into the Head, the Arms, the Thighs and the Feet, which was once the strongest point of the Vedic sociology and which made the Aryan Society so strong in the past, was totally forgotten and its place was taken by the abominable caste system which was no *system* at all. A system means that in which the parts and the whole are so organised

that they are interconnected and the growth of one is conducive to the growth of others. If such a thing does not exist, then we cannot call it a system. A collection of a goat's limbs on a butcher's shop is no *system*, though all the parts of the body are there. It was a system when the goat was alive and when the healthy growth of the mouth or the stomach meant the healthy growth of other limbs and the whole body. The old Aryan Society had a *varna*-system when the Brahmana, the Kshattriya, the Vaisya and the Shudra were the inter-linked and inter-dependent parts of the Aryan society and when each regarded the well-being of the whole as the well-being of itself. Swami Dayanand found that the prevailing caste-system of the Hindus was a degenerated and mutilated successor of once the pure *varna* system. Swami Dayanand said, "This should go. If one is not a Brahmana by fitness, one should be made to lose one's prestige and respect and seek one's level." Swami Daya Nand quoted for his support from the Vedas and other scriptures. He did not say that *varnas* are useless; every society required some classfication and the *varna* classification is the best. But this should not be based upon birth. The son of a Brahman can be a Kshattriya, or Vaishya or even Shudra. And a Shudra's son may be a Brahmana.

The Arya Samaj was the first to strike at the root of untouchability and it is trying hard to uproot the evil.

(*d*) Foreign Travels

Orthodox Hinduism looked upon the crossing of Sea as a sin Who ever left Indian shores was supposed to be a renegade and outcaste. How these restrictions originated it is difficult to trace, for in ancient times we find Aryans very enterprising and travel-loving Swami Dayanand saw the folly of the superstition. Now Arya Samajic missionaries go to Arabia, Baghdad, Africa, America and Euorpe to preach their religion without any hitch.

(*e*) Emancipation of Women

The Hindu society in which Swami Dayanand began to work was *very* unjust towards its womanhood. I should not say that it was the *most* unjust. That would be wrong. Western critics of our civilization have often been too cruel in estimating our merits and demerits and often political motives have been their guide. Still the position of the woman in the Hindu Society is not what it was in the Vedic times. The Vedas allowed the woman a full partnership.

She was the equal half of her husband (अर्धाङ्गिनी). In theory even the Hindu society admitted it. But in practice there were many disabilities. For instance : (1) Women were not taught. (2) (2) They were not taught the Vedas. They were supposed too low for sacred studies. (3) A man could marry several wives at the same time. (4) A widower could marry any number of times, but even a child widow had to keep enforced widowhood. Swami Dayanand discussed this question fully in his works. He has quoted the Vedas and other scriptures to prove that woman has as much right to read the Vedas as man. She wears sacred thread, reads the sacred books and has a free choice in marriage. A widow's right of remarriage is the same as a widower's. Polygamy is as bad as polyandry. Purdah is a cruelty.

The Arya Samaj had to fight much when it began the work of female education. The first indigenous girls' schools were those of the Arya Samaj and even now their number is not insignificant. There is hardly any Arya Samaj to which a girls' school is not attached. The Arya Samajists were the pioneers of female education and even now they are maintaining the same position.

What woman suffragettes could not achieve in the West with all their agitation and storm, the

Arya Samaj allowed them without any hitch. Any lady can be a member of the Arya Samaj and vote. She can represent on higher bodies. Our Pratinidhi Sabhas have got important lady-members on the Working Committee. Here too the honour of beginning the work goes to the Arya Samaj.

Educational Work

The following figures tell their own tale regarding the wonderful work done by the Arya Samaj in the educational field.

Gurukulas for boys	...	30
Gurukulas for girls	...	10
Colleges (D.A.V. College)	...	15
Primary Schools for boys		192
Middle Schools	...	151
High Schools	...	200
Girls' Primary Schools	...	700
Girls' High Schools	...	10
Night Schools	...	142
Depressed Class Schools	..	322

The work done by the Arya Samaj in the edutcaional field has been appreciated by all eminent public men in India and abroad.

'The Arya Samaj' says Pt. Jawaharlal Nehru, 'has done very good work in the spread of education both among boys and girls, in improving the condition of women and raising the status and standards of the depressed classes'.

("The Discovery of India" P.399)

THE INTERNATIONAL ARYAN LEAUGE.

The International Aryan League (The Sarva deshik Sabha) is the central representative body of all the Arya Samajes above 3000 in India Burma, Africa, Baghdad, Mauritius, Fiji Trinidad, South America etc. Its head office is at Delhi.

The Arya Samaj is a religious church and it has its own constitution. The ten principles of the Arya Samaj have already been given. Besides, there are bye-laws to run the administration. At least nine members make a duly constituted Arya Samaj if the members subscribe to its tenets, as will as declare their willingness to abide by the bye-laws. Every member must pay one per cent of his income to the fund of the Arya Samaj of which he is a member.

The Provincial Representative Assemblies called the Arya Pratinidhi Sabhas and affiliated to the International Aryan League are at in the following provinces:-

The Punjab, U.P., Behar, Bengal, and Assam, Rajputana, C.P., Sind, Bombay, Burma, East, Africa, South Africa, Fiji. Mauritius.

The above provincial bodies along with other Samajas of the places where a provincial representative body has not yet been formed, form a central body named the Arya Sarvadesika Sabha, Delhi, known in English as the International Aryan League. This is the representative body of all the Samajas of the world. From this constitution, which has been working well till now, it will be evident that the Arya Samaj is neither priest-ridden, nor bureaucratic in its character. From top to bottom, it is purely democratic and even the lowest among the lowest has his or her voice, directly or through representtion in the administration of the church.

Our constitution is free from invidious classification. Man and woman, high and low, poor and rich, all are alike in the eye of the constitution. It knows no distinction. It admits of no barrier.

GANGA PRASAD UPADHYAYA

Born September 6, 1881, at Nadarai (Kasgunj) on the river Kali in the Etah District, United Provinces. Parent's Home :—Marthara (Etah District). Graduated in 1908, and M. A. in 1912 in English Literature and in 1923 in Philosophy from the Allahabad University. Principal D. A. V. High School, Allahabad from 1924-39, President of the Arya Pratinidhi Sabha, U. P., 1941-45; Vice-President International Aryan League, Delhi, 1945; General Secretary, International Aryan League 1947-50.

Author of *Reason and Religion* (*1939*), *Swami Dayanand's Contribution to Hindu Solidarity* (*1939*), *I and My God* (*1939*), *Origin, Mission and Scope of Arya Samaj* (*1940*), *Worship* (*1940*), *Christianity in India* (*1941*), *Superstition* (*1941*), *Marriage and Married Life* (*1942*) *The Light of Truth* (English Version *of the Satyartha Prakasha*) (*1946*), *Land Marks of Swami Dayanand's Teachings* (*1947*), *Vedic-Culture* (*1949*), *Catechism on Hindusm* (*1950*), *Life After Death* (*1950*).

Also author of the Hindi books *Angrez Jati Ka Itihasa* (*1922*), *Arya Samaj* (*1924*), *Astika Vada* (*1926*), *Advaitavada* (*1928*), *Dhammapada* (*1932*), *Jivatma* (*1933*), *Sarva-darshan Sidhanta Sangrah*, *Manusmrti* (*1938*), *Bhagvat Katha* (*1943*), *Shankara Bhashyalochana* (*1947*), *Ham Kya Khaven* (*1949*), *Arya Smriti* (*1949*), *Communism* (*1950*).